शब्द है जैसा बौद्ध पिटकों में[1] भी है। इस तरह बौद्ध पिटकों के उल्लेखों और जैन आगमों के वर्णनों का मिलान करते हैं तो यह मानना ही पड़ता है कि पिटक और आगमों का वर्णन सचमुच ऐतिहासिक है। यद्यपि भ० महावीर के बाद उत्तरोत्तर सचेलता की और निर्ग्रन्थों की प्रवृत्ति बढ़ती गई है तो भी उसमें अचेलत्व रहा है और उसी की प्रतिष्ठा मुख्य रही है। इतनी ऐतिहासिक चर्चा से हम निम्नलिखित नतीजे पर निर्विवाद रूप से पहुँचते हैं—

१–भ० महावीर के पहले इतिहासयुग में निर्ग्रन्थ-परंपरा सचेल ही थी।

२–भ० महावीर ने अपने जीवन के द्वारा ही निर्ग्रन्थ-परंपरा में अचेलत्व दाखिल किया। और वही निर्ग्रन्थों का आदर्श स्वरूप माना जाने लगा तो भी पार्श्वापत्यिक-परंपरा के निर्ग्रन्थों को अपनी नई परंपरा में मिलाने की दृष्टि से निर्ग्रन्थों के मर्यादित सचेलत्व को भी स्थान दिया गया, जिससे भ० महावीर के समय में निर्ग्रन्थ-परंपरा के सचेल और अचेल दोनों रूप स्थिर हुए और सचेल में भी एकशाटक ही उत्कृष्ट आचार माना गया।

३—भ० महावीर के समय में या कुछ समय बाद सचेलत्व और अचेलत्व के पक्षपातियों में कुछ खींचातानी या प्राचीनता-अर्वाचीनता को लेकर वाद-विवाद होने लगा, तब भ० महावीर ने या उनके समकालीन शिष्यों ने समाधान किया कि अधिकार भेद से दोनों आचार ठीक हैं, यद्यपि प्राचीनता की दृष्टि से तो सचेलता ही मुख्य है, पर अचेलता नवीन होने पर भी गुणदृष्टि से मुख्य है।

सचेलता और अचेलता के बीच जो सामंजस्य हुआ था वह भी महावीर के बाद करीब दो सौ–ढाई सौ साल तक बराबर चलता रहा। आगे दोनों पक्षों के अभिनिवेश और खींचातानी के कारण निर्ग्रन्थ-परंपरा में ऐसी विकृतियाँ आईं कि जिनके कारण उत्तरकालीन निर्ग्रन्थ-वाङ्मय भी उस मुद्दे पर विकृत-सा हो गया है।

(३)

तप

बौद्ध-पिटकों में अनेक जगह 'निगंठ' के साथ 'तपस्सी', 'दीघ तपस्सी' ऐसे विशेषण आते हैं, इस तरह कई बौद्ध सुत्तों में राजगृही आदि जैसे स्थानों में तपस्या करते हुए निर्ग्रन्थों का वर्णन है, और खुद तथागत बुद्ध के द्वारा की गई

१. देखो पृ० ८८, टि० २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्ग्रन्थों की तपस्या की समालोचना भी आती है[1]। इसी तरह जहाँ बुद्ध ने अपनी पूर्व-जीवनी शिष्यों से कही वहाँ भी उन्होंने अपने साधना-काल में की गई कुछ ऐसी तपस्याओं का[2] वर्णन किया है जो एक मात्र निर्ग्रन्थ-परंपरा की ही कही जा सकती हैं और जो इस समय उपलब्ध जैन आगमों में वर्णन की गई निर्ग्रन्थ-तपस्याओं के साथ अक्षरशः मिलती हैं। अब हमें देखना यह है कि बौद्ध पिटकों में आनेवाला निर्ग्रन्थ-तपस्या का वर्णन कहाँ तक ऐतिहासिक है।

खुद ज्ञातपुत्र महावीर का जीवन ही केवल उग्र तपस्या का मूर्त स्वरूप है, जो आचारांग के प्रथम श्रुतस्कंध में मिलता है। इसके सिवाय आगमों के सभी पुराने स्तरों में जहाँ कहीं किसी के प्रव्रज्या लेने का वर्णन आता है वहाँ शुरू में ही हम देखते हैं कि वह दीक्षित निर्ग्रन्थ तपःकर्म[3] का आचरण करता है। एक तरह से महावीर के साधुसंघ की सारी चर्या ही तपोमय मिलती है। अनुत्तरोववाई आदि आगमों में अनेक ऐसे मुनियों का वर्णन है जिन्होंने उत्कट तप से अपने देह को केवल पंजर बना दिया[4] है। इसके सिवाय आज तक की जैन-परंपरा का शास्त्र तथा साधु-गृहस्थों का आचार देखने से भी हम यही कह सकते हैं कि महावीर के शासन में तप की महिमा अधिक रही है और उनके उत्कट तप का असर संघ पर ऐसा पड़ा है कि जैनत्व तप का दूसरा पर्याय ही बन गया है। महावीर के विहार के स्थानों में अंग-मगध, काशी-कोशल स्थान मुख्य हैं। जिस राजगृही आदि स्थान में तपस्या करनेवाले निर्ग्रन्थों का निर्देश बौद्ध ग्रन्थों में आता है वह राजगृही आदि स्थान तो महावीर के साधना और उपदेश-समय के मुख्य धाम रहे हैं और उन स्थानों में महावीर का निर्ग्रन्थ-संघ प्रधान रूप से रहा है। इस तरह हम बौद्धपिटकों और आगमों के मिलान से नीचे लिखे परिणाम पर पहुँचते हैं—

१—खुद महावीर और उनका निर्ग्रन्थ-संघ तपोमय जीवन के ऊपर अधिक भार देते थे।

२—अङ्ग-मगध के राजगृही आदि और काशी-कोशल के श्रावस्ती आदि शहरों में तपस्या करनेवाले निर्ग्रन्थ बहुतायत से विचरते और पाए जाते थे।

---

१. मज्झिम सुं० ५६ और १४।

२ देखो पृ० ५८, टि० १२.

३. भगवती ६. ३३। २. १.। ६. ६।

४. भगवती २. १।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊपर के कथन से महावीर के समकालीन और उत्तरकालीन निर्ग्रन्थ-परंपरा की तपस्या-प्रधान वृत्ति में तो कोई संदेह रहता ही नहीं, पर अब विचारना यह है कि महावीर के पहले भी निर्ग्रन्थ-परंपरा तपस्या-प्रधान थी या नहीं ?

इसका उत्तर हमें 'हाँ' में ही मिल जाता है। क्योंकि भ० महावीर ने पार्श्वापत्यिक निर्ग्रन्थ-परंपरा में ही दीक्षा ली थी। और दीक्षा के प्रारम्भ से ही तप की ओर झुके थे। इससे पार्श्वापत्यिक-परंपरा का तप की ओर कैसा झुकाव था इसका हमें पता चल जाता है। भ० पार्श्वनाथ का जो जीवन जैन ग्रन्थों में वर्णित है उसको देखने से भी हम यही कह सकते हैं कि पार्श्वनाथ की निर्ग्रन्थ-परंपरा तपश्चर्या-प्रधान रही। उस परंपरा में भ० महावीर ने शुद्धि या विकास का तत्त्व अपने जीवन के द्वारा भले ही दाखिल किया हो पर उन्होंने पहले से चली आने वाली पार्श्वापत्यिक निर्ग्रन्थ-परंपरा में तपोमार्ग का नया प्रवेश तो नहीं किया। इसका सबूत हमें दूसरी तरह से भी मिल जाता है। जहाँ बुद्ध ने अपनी पूर्व-जीवनी का वर्णन करते हुए अनेकविध तपस्याओं की निःसारता[1] अपने शिष्यों के सामने कही है वहाँ निर्ग्रन्थ तपस्या का भी निर्देश किया है। बुद्ध ने ज्ञातपुत्र महावीर के पहले ही जन्म लिया था और गृहत्याग करके तपस्वी-मार्ग स्वीकार किया था। उस समय में प्रचलित अन्यान्य पंथों की तरह बुद्ध ने निर्ग्रन्थ पंथ को भी थोड़े समय के लिए स्वीकार किया था और अपने समय में प्रचलित निर्ग्रन्थ-तपस्या का आचरण भी किया था। इसीलिए जब बुद्ध अपनी पूर्वाचरित तपस्याओं का वर्णन करते हैं, तब उसमें हूबहू निर्ग्रन्थ-तपस्याओं का स्वरूप भी आता है जो अभी जैन ग्रन्थों और जैन-परंपरा के सिवाय अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता। महावीर के पहले जिस निर्ग्रन्थ-तपस्या का बुद्ध ने अनुष्ठान किया वह तपस्या पार्श्वापत्यिक निर्ग्रन्थ-परंपरा के सिवाय अन्य किसी निर्ग्रन्थ-परंपरा की सम्भव नहीं है। क्योंकि महावीर तो अभी मौजूद ही नहीं थे और बुद्ध के जन्म-स्थान कपिलवस्तु से लेकर उनके साधनास्थल राजगृही, गया, काशी आदि में पार्श्वापत्यिक निर्ग्रन्थ-परंपरा का निर्विवाद अस्तित्व और प्राधान्य था। जहाँ बुद्ध ने सर्व प्रथम धर्मचक्र-प्रवर्तन किया वह सारनाथ भी काशी का ही एक भाग है, और वह काशी पार्श्वनाथ की जन्मभूमि तथा तपस्याभूमि रही है। अपनी साधना के समय जो बुद्ध के साथ पाँच दूसरे भिक्षु थे वे बुद्ध को छोड़कर सारनाथ-इसिपत्तन में ही आकर अपना तप करते थे। आश्चर्य नहीं कि वे पाँच भिक्षु निर्ग्रन्थ-परंपरा के ही अनुगामी हों। कुछ भी हो, पर बुद्ध ने निर्ग्रन्थ तपस्या का,

---

१. देखो पृ० ५८, टि० १२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भले ही थोड़े समय के लिए, आचरण किया था इसमें कोई संदेह ही नहीं है। और वह तपस्या पार्श्वापत्यिक निर्ग्रन्थ-परंपरा की ही हो सकती है। इससे हम यह मान सकते हैं कि ज्ञातपुत्र महावीर के पहले भी निर्ग्रन्थ-परंपरा का स्वरूप तपस्या-प्रधान ही था।

ऊपर की चर्चा से निर्ग्रन्थ-परंपरा की तपस्या संबंधी ऐतिहासिक स्थिति यह फलित होती है कि कम से कम पार्श्वनाथ से लेकर निर्ग्रन्थ-परंपरा तपःप्रधान रही है और उसके तप के झुकाव को महावीर ने और भी वेग दिया है। यहाँ हमारे सामने ऐतिहासिक दृष्टि से दो प्रश्न हैं। एक तो यह कि बुद्ध ने बार-बार निर्ग्रन्थ-तपस्याओं का जो प्रतिवाद या खंडन किया है वह कहाँ तक सही है और उसके खंडन का आधार क्या है? और दूसरा यह है कि महावीर ने पूर्व प्रचलित निर्ग्रन्थ-तपस्या में कोई विशेषता लाने का प्रयत्न किया है या नहीं और किया है तो क्या?

१—निर्ग्रन्थ-तपस्या के खंडन करने के पीछे बुद्ध की दृष्टि मुख्य यही रही है कि तप यह कायक्लेश है, देहदमन मात्र है। उसके द्वारा दुःखसहन का तो अभ्यास बढ़ता है लेकिन उससे कोई आध्यात्मिक सुख या चित्तशुद्धि प्राप्त नहीं[1] होती। बुद्ध की उस दृष्टि का हम निर्ग्रन्थ दृष्टि के साथ मिलान करें तो कहना होगा कि निर्ग्रन्थ-परंपरा की दृष्टि और बुद्ध की दृष्टि में तात्त्विक अंतर कोई नहीं है। क्योंकि खुद महावीर और उनके उपदेश को माननेवाली सारी निर्ग्रन्थ-परंपरा का वाङ्मय दोनों एक स्वर से यही कहते हैं[2] कि कितना ही देहदमन या काय-क्लेश उग्र क्यों न हो पर यदि उसका उपयोग आध्यात्मिक शुद्धि और चित्तक्लेश के निवारण में नहीं होता तो वह देहदमन या कायक्लेश मिथ्या है। इसका मतलब तो यही हुआ कि निर्ग्रन्थ-परंपरा भी देहदमन या कायक्लेश को तभी तक सार्थक मानती है जब तक उसका संबन्ध आध्यात्मिक शुद्धि के साथ हो। तब बुद्ध ने प्रतिवाद क्यों किया? यह प्रश्न सहज ही होता है। इसका खुलासा बुद्ध के जीवन के झुकाव से तथा उनके उपदेशों से मिलता है। बुद्ध की प्रकृति विशेष परिवर्तनशील और विशेष तर्कशील रही है। उनकी प्रकृति को जब उग्र देहदमन से संतोष नहीं हुआ तब उन्होंने उसे एक अन्त कह कर छोड़ दिया और ध्यानमार्ग, नैतिक जीवन तथा प्रज्ञा पर ही मुख्य भार दिया। उनको इसी के

---

१. देखो पृ० ५८, टि० १२

२. दशवै० ६. ४–४; भग० ३–१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा आध्यात्मिक सुख प्राप्त हुआ और उसी तत्त्व पर अपना नया संघ स्थापित किया। नए संघ को स्थापित करनेवाले के लिए यह अनिवार्य रूप से जरूरी हो जाता है कि वह अपने आचार-विचार संबन्धी नए झुकाव को अधिक से अधिक लोकग्राह्य बनाने के लिए प्रयत्न करे और पूर्वकालीन तथा समकालीन अन्य सम्प्रदायों के मन्तव्यों की उग्र आलोचना करे। ऐसा किए बिना कोई अपने नए संघ में अनुयायियों को न तो एकत्र कर सकता है और न एकत्र हुए अनुयायियों को स्थिर रख सकता है। बुद्ध के नए संघ की प्रतिस्पर्द्धी अनेक परंपराएँ मौजूद थीं जिनमें निर्ग्रन्थ-परंपरा का प्राधान्य जैसा-तैसा न था। सामान्य जनता स्थूल-दर्शी होने के कारण बाह्य उग्र तप और देहदमन से सरलता से तपस्वियों की ओर आकृष्ट होती है, यह अनुभव सनातन है। एक तो, पार्श्वापत्यिक निर्ग्रन्थ-परंपरा के अनुयायियों को तपस्या-संस्कार जन्मसिद्ध था और दूसरे, महावीर के तथा उनके निर्ग्रन्थ-संघ के उग्र तपश्चरण के द्वारा साधारण जनता अनायास ही निर्ग्रन्थों के प्रति झुकती ही थी और तपोनुष्ठान के प्रति बुद्ध का शिथिल रुख देख-कर उनके सामने प्रश्न कर बैठती थी कि आप तप को क्यों नहीं मानते[1] जब कि सब श्रमण तप पर भार देते हैं? तब बुद्ध को अपने पक्ष की सफाई भी करनी थी और साधारण जनता तथा अधिकारी एवं राजा-महाराजाओं को अपने मंतव्यों की ओर खींचना भी था। इसलिए उनके लिए यह अनिवार्य हो जाता था कि वह तप की उग्र समालोचना करें। उन्होंने किया भी ऐसा ही। वे तप की समालोचना में सफल तभी हो सकते थे जब वे यह बतलाएँ कि तप केवल कष्ट मात्र है। उस समय अनेक तपस्वी-मार्ग ऐसे भी थे जो केवल बाह्य विविध क्लेशों में ही तप की इतिश्री समझते थे। उन बाह्य तपोमार्गों की निःसारता का जहाँ तक संबन्ध है वहाँ तक तो बुद्ध का तपस्या का खंडन यथार्थ है, पर जब आध्यात्मिक शुद्धि के साथ संबन्ध रखनेवाली तपस्याओं के प्रतिवाद का सवाल आता है तब वह प्रति-वाद न्यायपूत नहीं मालूम होता। फिर भी बुद्ध ने निर्ग्रन्थ-तपस्याओं का खुल्लम-खुल्ला अनेक बार विरोध किया है तो इसका अर्थ इतना ही समझना चाहिए कि बुद्ध ने निर्ग्रन्थ-परम्परा के दृष्टिकोण को पूर्णतया लक्ष्य में न लेकर केवल उनके बाह्य तप की ओर ध्यान दिया और दूसरी परंपराओं के खंडन के साथ निर्ग्रन्थ-परम्परा के तप को भी घसीटा। निर्ग्रन्थ-परम्परा का तात्त्विक दृष्टिकोण कुछ भी क्यों न रहा हो पर मनुष्य-स्वभाव को देखते हुए तथा जैन ग्रन्थों में आनेवाले[2]

१ अंगुत्तर Vol. I. P. 220

२ उत्तरा० अ० १७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कतिपय वर्णनों के आधार पर हम यह भी कह सकते हैं कि सभी निर्ग्रन्थ-तपस्वी ऐसे नहीं थे जो अपने तप या देहदमन को केवल आध्यात्मिक शुद्धि में ही चरितार्थ करते हों। ऐसी स्थिति में यदि बुद्ध ने तथा उनके शिष्यों ने निर्ग्रन्थ-तपस्या का प्रतिवाद किया तो वह अंशतः सत्य भी कहा जा सकता है।

२—दूसरे प्रश्न का जवाब हमें जैन आगमों से ही मिल जाता है। बुद्ध की तरह महावीर भी केवल देहदमन को जीवन का लक्ष्य समझते न थे। क्योंकि ऐसे अनेक-विध घोर देहदमन करनेवालों को भ० महावीर ने तापस या मिथ्या तप करनेवाला कहा है[1]। तपस्या के विषय में भी पार्श्वनाथ की दृष्टि मात्र देहदमन या कायक्लेश प्रधान न होकर आध्यात्मिक शुद्धिलक्षी थी। पर इसमें तो संदेह ही नहीं है कि निर्ग्रन्थ-परम्परा भी काल के प्रवाह में पड़कर और मानव-स्वभाव की निर्बलता के अधीन होकर आज की महावीर की परंपरा की तरह मुख्यतया देहदमन की ओर ही झुक गई थी और आध्यात्मिक लक्ष्य एक ओर रह गया था। भ० महावीर ने किया सो तो इतना ही है कि उस परंपरागत स्थूल तप का संबंध आध्यात्मिक शुद्धि के साथ अनिवार्य रूप से जोड़ दिया और कह दिया कि सब प्रकार के कायक्लेश, उपवास आदि शरीरेन्द्रियदमन तप हैं पर वे बाह्य तप हैं, आंतरिक तप नहीं[2]। आन्तरिक व आध्यात्मिक तप तो अन्य ही हैं, जो आत्मशुद्धि से अनिवार्य संबन्ध रखते हैं और ध्यान-ज्ञान आदि रूप हैं। महावीर ने पार्श्वापत्यिक निर्ग्रन्थ-परंपरा में चले आनेवाले बाह्य तप को स्वीकार तो किया पर उसे ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया बल्कि कुछ अंश में अपने जीवन के द्वारा उसमें उग्रता ला करके भी उस देहदमन का संबन्ध आभ्यन्तर तप के साथ जोड़ा और स्पष्ट रूप से कह दिया कि तप की पूर्णता तो आध्यात्मिक शुद्धि की प्राप्ति से ही हो सकती है। खुद आचरण से अपने कथन को सिद्ध करके जहाँ एक ओर महावीर ने निर्ग्रन्थ-परंपरा के पूर्व प्रचलित शुष्क देहदमन में सुधार किया वहाँ दूसरी ओर अन्य श्रमण-परंपराओं में प्रचलित विविध देहदमनों को भी अपूर्ण तप और मिथ्या तप बतलाया। इसलिए यह कहा जा सकता है कि तपोमार्ग में महावीर की देन खास है और वह यह कि केवल शरीर और इन्द्रियदमन में समा जानेवाले तप शब्द के अर्थ को आध्यात्मिक शुद्धि में उपयोगी ऐसे सभी उपायों तक विस्तृत किया। यही कारण है कि जैन आगमों में पद-पद पर आभ्यन्तर और बाह्य दोनों प्रकार के तपों का साथ-साथ निर्देश आता है।

---

१. भगवती ३. १। ११. ६।

२ उत्तरा० ३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बुद्ध को तप की पूर्व परंपरा छोड़कर ध्यान-समाधि की परंपरा पर ही अधिक भार देना था जब कि महावीर को तप की पूर्व परंपरा बिना छोड़े भी उसके साथ आध्यात्मिक शुद्धि का संबन्ध जोड़कर ही ध्यान-समाधि के मार्ग पर भार देना था। यही दोनों की प्रवृत्ति और प्ररूपणा का मुख्य अन्तर था। महावीर के और उनके शिष्यों के तपस्वी-जीवन का जो समकालीन जनता के ऊपर असर पड़ता था उससे बाधित होकर के बुद्ध को अपने भिक्षुसङ्घ में अनेक कड़े नियम दाखिल करने पड़े जो बौद्ध विनय-पिटक को देखने से मालूम हो जाता है[1]। तो भी बुद्ध ने कभी बाह्य-तप का पक्षपात नहीं किया बल्कि जहाँ प्रसंग आया वहाँ उसका परिहास ही किया। खुद बुद्ध की इस शैली को उत्तरकालीन सभी बौद्ध लेखकों ने अपनाया है फलतः आज हम यह देखते हैं कि बुद्ध का देहदमन-विरोध बौद्ध संघ में सुकुमारता में परिणत हो गया है, जब कि महावीर का बाह्य तपोजीवन जैन-परंपरा में केवल देहदमन में परिणत हो गया है जो कि दोनों सामुदायिक प्रकृति के स्वाभाविक दोष हैं, न कि मूलपुरुषों के आदर्श के दोष।

(४)

आचार-विचार

तथागत बुद्ध ने अपने पूर्व-जीवन का वर्णन करते हुए अनेकविध आचारों का वर्णन किया है, जिनको कि उन्होंने खुद पाला था। उन आचारों में अनेक आचार ऐसे हैं जो केवल निर्ग्रन्थ-परंपरा में ही प्रसिद्ध हैं और इस समय भी वे आचार आचारांग, दशवैकालिक आदि प्राचीन सूत्रों में निर्ग्रन्थ के आचार रूप से वर्णित हैं। वे आचार संक्षेप में ये हैं—नग्नत्व—वस्त्रधारण न करना, 'आइए भदन्त!' 'खड़े रहिये भदन्त!' ऐसा कोई कहे तो उसे सुना-अनसुना कर देना, सामने लाकर दी हुई भिक्षा का, अपने उद्देश्य से बनाई हुई भिक्षा का, और दिये गए निमन्त्रण का अस्वीकार; जिस बर्तन में रसोई पकी हो उसमें से सीधी दी गई भिक्षा का तथा खल आदि में से दी गई भिक्षा का अस्वीकार; जीमते हुए दो में से उठकर एक के द्वारा दी जाने वाली भिक्षा का, गर्भिणी स्त्री के द्वारा दी हुई भिक्षा का और पुरुषों के साथ एकान्त में स्थित ऐसी स्त्री के द्वारा दी जानेवाली भिक्षा का, बच्चों को दूध पिलाती हुई स्त्री के द्वारा दी जानेवाली भिक्षा का अस्वीकार; उत्सव, मेले और यात्रादि में जहाँ सामूहिक भोजन बना हो वहाँ से भिक्षा का

१. उदाहरणार्थ—वनस्पति आदि के जन्तुओं की हिंसा से बचने के लिए चतुर्मास का नियम—बौद्ध संघनो परिचय पृ० २२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org